

खण्ड II



जीविका, अर्थव्यवस्था एवं समाज

खण्ड II में हम जीविका और अर्थव्यवस्थाओं के बारे में अध्ययन करेंगे। यहाँ हम इस बात पर विचार करेंगे कि आधुनिक विश्व में वनवासियों और चरवाहा समुदायों की ज़िंदगी में किस तरह के बदलाव आए और इन बदलावों को तय करने में उन्होंने किस तरह का योगदान दिया।

आधुनिक विश्व का उदय कैसे हुआ है, इस बात पर विचार करते हुए हम अक्सर कारखानों और शहरों पर और बाज़ार को आपूर्ति करने वाले औद्योगिक और कृषि क्षेत्रों पर ही ध्यान देते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि इन क्षेत्रों के बाहर दूसरी अर्थव्यवस्थाएँ भी हैं, दूसरे लोग भी हैं जो राष्ट्र के लिए महत्व रखते हैं। आधुनिक दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि चरवाहों और वनवासियों, घुमंतू किसानों और खाने की चीज़ें बीन कर गुज़र करने वालों की ज़िंदगी अतीत में ही कहीं अटक कर रह गई है। समकालीन विश्व के उदय का अध्ययन करते हुए उनके प्रति हमारा रवैया कुछ ऐसा रहता है मानो उनकी ज़िंदगी का कोई महत्व ही न हो। खण्ड II के अध्यायों में इस बात को रेखांकित किया गया है कि हमें उनकी ज़िंदगी के बारे में जानना चाहिए; हमें देखना चाहिए कि वे अपनी दुनिया को कैसे व्यवस्थित करते हैं और कैसे अपनी रोज़ी-रोटी चलाते हैं। ये लोग भी पूरी तरह उसी दुनिया का हिस्सा हैं जिसमें हम आज रह रहे हैं। वे गुज़रे हुए ज़माने के बचे-खुचे लोग नहीं हैं।

अध्याय 4 में आप जंगलों की सैर करेंगे। यहाँ आप देखेंगे कि जंगलों में रहने वाले विविध समुदाय जंगलों का किस-किस तरह इस्तेमाल करते रहे हैं। यहाँ आपको पता चलेगा कि उन्नीसवीं सदी में उद्योग और शहरों, जहाज़रानी और रेलवे के उदय व विस्तार से लकड़ी और अन्य वन उत्पादों के लिए जंगलों पर दबाव कितना बढ़ गया था। इन नई ज़रूरतों और माँगों के चलते जंगलों के प्रयोग से संबंधित कायदे-कानून बदले गए और जंगलों के रखरखाव की एक नई पद्धति सामने आई। यहाँ इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि जंगलों पर औपनिवेशिक नियंत्रण कैसे कायम हुआ, कैसे वन क्षेत्रों को मापा गया, पेड़ों का वर्गीकरण किया गया और बागान विकसित किए गए। इन सारे परिवर्तनों से वन संसाधनों का इस्तेमाल करने वाले स्थानीय समुदायों की ज़िंदगी पर भी असर पड़ा। उन्हें नई व्यवस्था में काम करने और अपने जीवन को नए सिरे से संगठित करने के लिए विवश किया गया। लेकिन बहुधा उन्होंने इन नियमों और कानूनों के खिलाफ़ बगावत भी की और सरकारों को अपनी नीतियाँ बदलने के लिए बाध्य किया। इस अध्याय में आपको इस बात का अंदाज़ा मिलेगा कि भारत और इंडोनेशिया में इन परिवर्तनों का इतिहास क्या रहा है।

अध्याय 5 में भारत और अफ़्रीका के पहाड़ों और रेगिस्तानों, मैदानों और पठारों में चरवाहों के पदचिह्नों को ढूँढ़ने की कोशिश की गई है। इन दोनों क्षेत्रों में चरवाहा समुदाय आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। फिर भी हम विरले ही कभी उनके जीवन का अध्ययन करते हैं। उनका इतिहास पाठ्यपुस्तकों के पन्नों में

शामिल नहीं हो पाता। अध्याय 5 में आपको पता चलेगा कि जंगलों पर स्थापित होते जा रहे नियंत्रण, कृषि विस्तार और चरागाहों के सिमटते जाने से उनके जीवन पर किस तरह के असर पड़े। इस हिस्से में आपको उनके आवागमन, अपने समुदाय के साथ उनके संबंधों और बदलते परिवेश के अनुरूप वह खुद को कैसे ढालते हैं, इसके बारे में जानने का मौका मिलेगा।

जब तक हम विभिन्न समुदायों और समाजों के जीवन में आ रहे परिवर्तनों को देखना-बूझना शुरू नहीं करेंगे तब तक इस बात को अच्छी तरह नहीं समझ पाएँगे कि आज की दुनिया कैसे बनी है। साथ ही आधुनिकीकरण की समस्याओं को भी हम तब तक पूरी तरह नहीं समझ पाएँगे जब तक कि हम उससे पर्यावरण पर पड़ रहे प्रभावों पर विचार नहीं करेंगे।



0967CH04

वन्य-समाज और उपनिवेशवाद

अपने स्कूल और घर में चारों ओर नज़र दौड़ाकर उन सभी वस्तुओं को पहचानें जो जंगल की हैं—इस किताब का कागज़, मेज़-कुर्सियाँ, दरवाज़े-खिड़कियाँ, वे रंग जिनसे आपके कपड़े रंगे जाते हैं, मसाले, आपकी टॉफ़ी के सेलोफ़ेन रैपर, बीड़ियों के तेंदू पत्ते, गोंद, शहद, कॉफ़ी, चाय और रबड़। साथ ही चॉकलेट में इस्तेमाल होने वाला तेल जो साल के बीजों से निकलता है, खाल से चमड़ा बनाने में इस्तेमाल होने वाला चर्मशोधक (टैनिन) या दवाओं के रूप में इस्तेमाल होने वाली जड़ी-बूटियाँ—इन सबको भी हमें नहीं भूलना चाहिए। और हाँ, बाँस, जलावन की लकड़ी, घास, कच्चा कोयला, पैकिंग में उपयोग होने वाली वस्तुएँ, फल-फूल, पशु-पक्षी एवं ढेरों दूसरी चीज़ें भी तो जंगलों से ही आती हैं। ऐमेज़ॉन या पश्चिमी घाट के जंगलों के एक ही टुकड़े में पौधों की 500 अलग-अलग प्रजातियाँ मिल जाती हैं।

यह विविधता तेज़ी से लुप्त होती जा रही है। औद्योगीकरण के दौर में सन् 1700 से 1995 के बीच 139 लाख वर्ग किलोमीटर जंगल यानी दुनिया के कुल क्षेत्रफल का 9.3 प्रतिशत भाग औद्योगिक इस्तेमाल, खेती-बाड़ी, चरागाहों व ईंधन की लकड़ी के लिए साफ़ कर दिया गया।



चित्र 1 - यह छत्तीसगढ़ का एक साल वन है।

घना होने के कारण जंगल की सतह तक सूरज की रोशनी यहाँ कम ही पहुँच पाती है। इस चित्र में आप पेड़-पौधों के विभिन्न आकार और प्रजातियाँ देख सकते हैं।

1 वनों का विनाश क्यों?

वनों के लुप्त होने को सामान्यतः वन-विनाश कहते हैं। वन-विनाश कोई नयी समस्या नहीं है। वैसे तो यह प्रक्रिया कई सदियों से चली आ रही थी लेकिन औपनिवेशिक शासन के दौरान इसने कहीं अधिक व्यवस्थित और व्यापक रूप ग्रहण कर लिया। आइए, भारत में वन-विनाश के कुछ कारणों पर गौर करें।

1.1 ज़मीन की बेहतरी

सन् 1600 में हिंदुस्तान के कुल भू-भाग के लगभग छठे हिस्से पर खेती होती थी। आज यह आँकड़ा बढ़ कर आधे तक पहुँच गया है। इन सदियों के दौरान जैसे-जैसे आबादी बढ़ती गयी और खाद्य पदार्थों की माँग में भी वृद्धि हुई, वैसे-वैसे किसान भी जंगलों को साफ़ करके खेती की सीमाओं को विस्तार देते गए। औपनिवेशिक काल में खेती में तेज़ी से फैलाव आया।



चित्र 2 - ह्वेन द वैलीज़ वर फुल (जब घाटियाँ भरी पड़ी थीं)। जॉन डॉसन की पेंटिंग।

लाकोटा जैसे देशज अमेरिकी आदिवासी समूह, जो इन विशाल उत्तर-अमेरिकी मैदानों में रहते थे, का अर्थतंत्र अत्यंत वैविध्यपूर्ण था। वे मक्का उगाते, बीसन का शिकार करते और जंगली पौधों की खोज में रहते थे। अंग्रेज़ आबादकारों ने बीसनों के लिए विशाल भू-भाग को खुला छोड़ना बेकार समझा। 1860 के बाद बीसनों की बहुत बड़ी संख्या में हत्या की गई।

इसकी कई वजहें थीं। पहली, अंग्रेजों ने व्यावसायिक फ़सलों जैसे पटसन, गन्ना, गेहूँ व कपास के उत्पादन को जम कर प्रोत्साहित किया। उन्नीसवीं सदी के यूरोप में बढ़ती शहरी आबादी का पेट भरने के लिए खाद्यान्न और औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चे माल की ज़रूरत थी। लिहाज़ा इन फ़सलों

बॉक्स 1

किसी स्थान पर खेती न होने का मतलब उस जगह का गैर-आबाद होना नहीं है। जब गोरे आबादकार ऑस्ट्रेलिया पहुँचे तो उन्होंने दावा किया कि यह महाद्वीप खाली था। वास्तव में, ये आदिवासी पथ-प्रदर्शकों के नेतृत्व में, पुरातन रास्तों से इस भू-भाग में प्रविष्ट हुए थे। ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न आदिवासी समुदायों के अपने स्पष्ट विभाजित इलाके थे। ऑस्ट्रेलिया के नगारिन्दजेरियों (Ngarrindjeri) की अपनी ज़मीन की आकृति इनके पहले पूर्वज, नगुरुनदेरी (Ngurunderi) के प्रतीकात्मक शरीर जैसी थी। यह ज़मीन पाँच अलग-अलग प्राकृतिक प्रदेशों : खारे पानी, झीलों, झाड़ियों, रेगिस्तानी मैदानों, नदीतटीय मैदानों को अपने में समेटे हुए थी, जो अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक ज़रूरतों को पूरा किया करते थे।

की माँग में इजाज़ा हुआ। दूसरी वजह यह थी कि उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में औपनिवेशिक सरकार ने जंगलों को अनुत्पादक समझा। उनके हिसाब से इस व्यर्थ के बियाबान पर खेती करके उससे राजस्व और कृषि उत्पादों को पैदा किया जा सकता था और इस तरह राज्य की आय में बढ़ोतरी की जा सकती थी। यही वजह थी कि 1880 से 1920 के बीच खेती योग्य ज़मीन के क्षेत्रफल में 67 लाख हेक्टेयर की बढ़त हुई।

खेती के विस्तार को हम विकास का सूचक मानते हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ज़मीन को जोतने के पहले जंगलों की कटाई करनी पड़ती है।

स्रोत क

परती ज़मीन पर कब्ज़ा करके उसे खेती के योग्य बनाया जाए, यह विचार सारी दुनिया के उपनिवेशकों के बीच शुरू से ही लोकप्रिय रहा है। यही वह विचार था जिसने विजय को न्यायोचित ठहराया।

अमेरिकी लेखक रिचर्ड हार्डिंग 1896 में मध्य-अमेरिका के हॉन्डूरास के बारे में लिखते हैं:

‘आज इससे बढ़कर रोचक सवाल कुछ और नहीं हो सकता कि दुनिया की गैर-विकसित पड़ी ज़मीन का क्या किया जाए; क्या इसे उस महान शक्ति के हाथों में जाना चाहिए जो इसके परिवर्तन की इच्छा रखती है या कि इसे इसके वास्तविक स्वामी के हाथों में ही रहने देना चाहिए, जो इसके मूल्य को नहीं समझ सकता। ये मध्य-अमेरिकी एक सुसज्जित घर में अर्ध-बर्बरों के गिरोह जैसे हैं जो न तो इस घर का उपयोग ही कर सकते हैं और न ही इसमें आराम।’

तीन साल बाद अमेरिकी-आधिपत्य में यूनाइटेड फ्रूट कंपनी का गठन हुआ जिसने व्यापक पैमाने पर मध्य-अमेरिका में केले उगाना प्रारंभ किया। इस कंपनी ने इन मुल्कों की सरकारों पर इस हद तक अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था कि इन्हें ‘बनाना रिपब्लिक’ के नाम से जाना गया।

डेविड स्पर, ‘द रेटरिक ऑफ़ एम्पायर’ (1993) में उद्धृत।

1.2 पटरी पर स्लीपर



चित्र 3 - सिंहभूम के जंगलों में साल के तनों से ‘स्लीपर्स’ का निर्माण, छोटा नागपुर, मई 1897.

रेल की पटरी हेतु स्लीपर बनाने के लिए वन-विभाग पेड़ों को काटने और इनसे पटरे बनाने के लिए तो आदिवासियों को नियुक्त किया करता था लेकिन उनको अपने घर बनाने के लिए इन पेड़ों को काटने की अनुमति न थी।

नए शब्द

स्लीपर: रेल की पटरी के आर-पार लगे लकड़ी के तख्ते जो पटरियों को उनकी जगह पर रोके रखते हैं।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक इंग्लैंड में बलूत (ओक) के जंगल लुप्त होने लगे थे। इसकी वजह से शाही नौसेना के लिए लकड़ी की आपूर्ति में मुश्किल आ खड़ी हुई। मजबूत और टिकाऊ लकड़ी की नियमित आपूर्ति के बिना अंग्रेज़ी जहाज़ भला कैसे बन सकते थे? और जहाज़ों के बिना शाही सत्ता कैसे बचाई और बनाए रखी जा सकती थी? 1820 के दशक में खोजी दस्ते हिंदुस्तान की वन-संपदा का अन्वेषण करने के लिए भेजे गए। एक दशक के भीतर बड़े पैमाने पर पेड़ काटे जाने लगे और भारी मात्रा में लकड़ी का हिंदुस्तान से निर्यात होने लगा।

1850 के दशक में रेल लाइनों के प्रसार ने लकड़ी के लिए एक नई तरह की माँग पैदा कर दी। शाही सेना के आवागमन और औपनिवेशिक व्यापार के लिए रेल लाइनें अनिवार्य थीं। इंजनों को चलाने के लिए ईंधन के तौर पर और रेल की पटरियों को जोड़ें रखने के लिए 'स्लीपरों' के रूप में लकड़ी की भारी ज़रूरत थी। एक मील लंबी रेल की पट्टी के लिए 1760-2000 स्लीपरों की आवश्यकता पड़ती थी।

भारत में रेल-लाइनों का जाल 1860 के दशक से तेज़ी से फैला। 1890 तक लगभग 25,500 कि.मी. लंबी लाइनें बिछायी जा चुकी थीं। 1946 में इन लाइनों की लंबाई 7,65,000 कि.मी. तक बढ़ चुकी थी। रेल लाइनों के प्रसार के साथ-साथ बड़ी तादाद में पेड़ भी काटे गए। अकेले मद्रास प्रेसीडेंसी में 1850 के दशक में प्रतिवर्ष 35,000 पेड़ स्लीपरों के लिए काटे गए। सरकार ने आवश्यक मात्रा की आपूर्ति के लिए निजी ठेके दिए। इन ठेकेदारों ने बिना सोचे-समझे पेड़ काटना शुरू कर दिया। रेल लाइनों के इर्द-गिर्द जंगल तेज़ी से गायब होने लगे।



चित्र 4 - बाँस के बेड़े कासालाँग नदी में बह कर जाते हुए, चिट्टुगाँव पर्वतीय पट्टी.



चित्र 5 - रंगून के एक लकड़ी गोदाम में लकड़ी के शहतीर सहेजता हुआ हाथी.

औपनिवेशिक दौर में अक्सर हाथियों का इस्तेमाल जंगलों और लकड़ी के गोदामों में भारी-भरकम लकड़ी को उठाने के लिए किया जाता था।

‘मुल्तान और सुक्कूर के बीच इंडस वैली रेलवे नाम से लगभग 300 मील लंबी एक नई लाइन बनायी जानी थी। 2000 स्लीपर प्रति मील की दर से, इसके लिए 10 फुट × 10 इंच × 5 इंच (या 3.5 घन फुट प्रति इकाई) के 600,000 स्लीपर की जरूरत होगी या कि 2,00,000 क्यूबिक फीट से ऊपर लकड़ी की। इन इंजनों को ईंधन के लिए लकड़ी चाहिए। दोनों तरफ़ प्रतिदिन एक ट्रेन व एक मन प्रति ट्रेन-मील के हिसाब से सालाना 2,19,000 मन की जरूरत होगी। इसके अलावा ईंटों के लिए भी भारी मात्रा में ईंधन की जरूरत होगी। स्लीपर मुख्य रूप से सिंध के जंगलों से आया करेंगे। यह ईंधन, सिंध और पंजाब के झाऊ (Tamarisk) और झांड (Jhand) के जंगलों से लाया जाना था। दूसरी नयी लाइन नॉर्दर्न स्टेट रेलवे, लाहौर से मुल्तान तक थी। आँकड़ों के हिसाब से इसके निर्माण के लिए 22,00,000 स्लीपर की जरूरत होगी।’

ई.पी.स्टेबिंग, द फ़ॉरेस्ट्स ऑफ़ इंडिया, भाग II (1923)।

क्रियाकलाप

एक मील लंबी रेल की पटरी के लिए 1,760 से 2,000 तक स्लीपर की जरूरत थी। यदि 3 मीटर लंबी बड़ी लाइन की पटरी बिछाने के लिए एक औसत कद के पेड़ से 3-5 स्लीपर बन सकते हैं तो हिसाब लगा कर देखें कि एक मील लंबी पटरी बिछाने के लिए कितने पेड़ काटने होंगे?



चित्र 6 - ईंधन की लकड़ी इकट्ठा कर घर को लौटती औरतें।

चित्र 7 - लट्टे ले जाता हुआ ट्रक।

लट्टे काटने के लिए किसी क्षेत्र का चुनाव करने के बाद वन विभाग सबसे पहले चौड़ी सड़कों का निर्माण करता है जिससे ट्रकों का प्रवेश संभव हो सके। जंगल के उन रास्तों से इसकी तुलना करें जिनसे होकर लोग ईंधन की लकड़ी या दूसरे लघु वन-उत्पाद इकट्ठा करने के लिए जाया करते थे। ऐसे अनेक ट्रक लकड़ी से भरे हुए जंगलों से बड़े शहरों को जाते थे।

1.3 बागान

यूरोप में चाय, कॉफ़ी और रबड़ की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए इन वस्तुओं के बागान बने और इनके लिए भी प्राकृतिक वनों का एक भारी हिस्सा साफ़ किया गया। औपनिवेशिक सरकार ने जंगलों को अपने कब्जे में लेकर उनके विशाल हिस्सों को बहुत सस्ती दरों पर यूरोपीय बागान मालिकों को सौंप दिया। इन इलाकों की बाढ़ाबंदी करके जंगलों को साफ़ कर दिया गया और चाय-कॉफ़ी की खेती की जाने लगी।



चित्र 8 - प्लेज़र ब्रॉड चाय



2 व्यावसायिक वानिकी की शुरुआत

पिछले खंड में हमने देखा कि जहाज़ और रेल की पटरियाँ बिछाने के लिए अंग्रेज़ों को जंगलों की ज़रूरत थी। अंग्रेज़ों को इस बात की चिंता थी कि स्थानीय लोगों द्वारा जंगलों का उपयोग व व्यापारियों द्वारा पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से जंगल नष्ट हो जाएँगे। इसलिए उन्होंने डायट्रिच ब्रैंडिस नामक जर्मन विशेषज्ञ को इस विषय पर मशविरे के लिए बुलाया और उसे देश का पहला वन महानिदेशक नियुक्त किया गया।

ब्रैंडिस ने महसूस किया कि लोगों को संरक्षण विज्ञान में प्रशिक्षित करना और जंगलों के प्रबंधन के लिए एक व्यवस्थित तंत्र विकसित करना होगा। इसके लिए कानूनी मंजूरी की ज़रूरत पड़ेगी। वन संपदा के उपयोग संबंधी नियम तय करने पड़ेंगे। पेड़ों की कटाई और पशुओं को चराने जैसी गतिविधियों पर पाबंदी लगा कर ही जंगलों को लकड़ी उत्पादन के लिए आरक्षित किया जा सकेगा। इस तंत्र की अवमानना करके पेड़ काटने वाले



क्रियाकलाप

यदि 1862 में भारत सरकार की बागडोर आपके हाथ में होती और आप पर इतने व्यापक पैमाने पर रेलों के लिए स्लीपर और ईंधन आपूर्ति की ज़िम्मेवारी होती तो आप इसके लिए कौन-कौन से कदम उठाते?

चित्र 9 - इटली स्थित टस्कनी में पोपलर के जंगल का एक व्यवस्थित गलियारा.

पोपलर के जंगल मुख्यतः लकड़ी के लिए महत्व रखते हैं। पत्तों, फलों या दूसरे उत्पादों के लिए ये उपयोगी नहीं हैं। एक समान लंबाई वाले और सीध में लगे इन पेड़ों को देखें। यही वह मॉडल है जिसे 'वैज्ञानिक' वानिकी ने प्रोत्साहित किया।



चित्र 10 - काँगड़ा का एक देवदार बागान, 1933.

इंडियन फ़ॉरेस्ट रिकॉर्ड्स, भाग XV से।

किसी भी व्यक्ति को सजा का भागी बनना होगा। इस तरह ब्रैंडिस ने 1864 में भारतीय वन सेवा की स्थापना की और 1865 के भारतीय वन अधिनियम को सूत्रबद्ध करने में सहयोग दिया। इम्पीरियल फ़ॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना 1906 में देहरादून में हुई। यहाँ जिस पद्धति की शिक्षा दी जाती थी उसे 'वैज्ञानिक वानिकी' (साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री) कहा गया। लेकिन आज पारिस्थितिकी विशेषज्ञों सहित ज्यादातर लोग मानते हैं कि यह पद्धति कतरई वैज्ञानिक नहीं है।

वैज्ञानिक वानिकी के नाम पर विविध प्रजाति वाले प्राकृतिक वनों को काट डाला गया। इनकी जगह सीधी पंक्ति में एक ही किस्म के पेड़ लगा दिए गए। इसे बागान कहा जाता है। वन विभाग के अधिकारियों ने जंगलों का सर्वेक्षण किया, विभिन्न किस्म के पेड़ों वाले क्षेत्र की नाप-जोख की और वन-प्रबंधन के लिए योजनाएँ बनायीं। उन्होंने यह भी तय किया कि बागान का कितना क्षेत्र प्रतिवर्ष काटा जाएगा। कटाई के बाद खाली ज़मीन पर पुनः पेड़ लगाए जाने थे ताकि कुछ ही वर्षों में यह क्षेत्र पुनः कटाई के लिए तैयार हो जाए।

1865 में वन अधिनियम के लागू होने के बाद इसमें दो बार संशोधन किए गए - पहले 1878 में और फिर 1927 में। 1878 वाले अधिनियम में जंगलों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया : आरक्षित, सुरक्षित व ग्रामीण। सबसे अच्छे जंगलों को 'आरक्षित वन' कहा गया। गाँव वाले इन जंगलों से अपने उपयोग के लिए कुछ भी नहीं ले सकते थे। वे घर बनाने या ईंधन के लिए केवल सुरक्षित या ग्रामीण वनों से ही लकड़ी ले सकते थे।

2.1 लोगों का जीवन कैसे प्रभावित हुआ?

एक अच्छा जंगल कैसा होना चाहिए इसके बारे में वनपालों और ग्रामीणों के विचार बहुत अलग थे। जहाँ एक तरफ ग्रामीण अपनी अलग-अलग ज़रूरतों,



चित्र 11 - दि इम्पीरियल फ़ॉरेस्ट स्कूल देहरादून, भारत.

ब्रिटिश साम्राज्य में खुला पहला वानिकी स्कूल।

स्रोत: इंडियन फ़ॉरेस्टर, खण्ड XXXI.

नया शब्द

वैज्ञानिक वानिकी : वन विभाग द्वारा पेड़ों की कटाई जिसमें पुराने पेड़ काट कर उनकी जगह नए पेड़ लगाए जाते हैं।



चित्र 12 - जंगलों से महुआ (*Madhuca Indica*) बीनना.

गाँव वाले उजाला होने के पहले ही उठकर जमीन पर गिरे हुए महुआ के फूलों को बीनने के लिए जंगल चले जाते। महुआ के पेड़ बेशकीमती हैं। महुआ के फूल खाए भी जा सकते हैं और इनका इस्तेमाल शराब बनाने के लिए भी किया जा सकता है। इसके बीजों से तेल भी बनाया जाता है।

जैसे ईंधन, चारे व पत्तों की पूर्ति के लिए वन में विभिन्न प्रजातियों का मेल चाहते थे, वहीं वन-विभाग को ऐसे पेड़ों की जरूरत थी जो जहाजों और रेलवे के लिए इमारती लकड़ी मुहैया करा सकें, ऐसी लकड़ियाँ जो सख्त, लंबी और सीधी हों। इसलिए सागौन और साल जैसी प्रजातियों को प्रोत्साहित किया गया और दूसरी किस्में काट डाली गईं।

वन्य इलाकों में लोग कंद-मूल-फल, पत्ते आदि वन-उत्पादों का विभिन्न जरूरतों के लिए उपयोग करते हैं। फल और कंद अत्यंत पोषक खाद्य हैं, विशेषकर मॉनसून के दौरान जब फ़सल कट कर घर न आयी हो। दवाओं के लिए जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल होता है, लकड़ी का प्रयोग हल जैसे खेती के औज़ार बनाने में किया जाता है, बाँस से बेहतरिन बाड़ें बनायी जा सकती हैं और इसका उपयोग छतरी तथा टोकरी बनाने के लिए भी किया जा सकता है। सूखे हुए कुम्हड़े के खोल का प्रयोग पानी की बोतल के रूप में किया जा सकता है। जंगलों में लगभग सब कुछ उपलब्ध है - पत्तों को जोड़-जोड़ कर 'खाओ-फेंको' किस्म के पत्तल और दोने बनाए जा सकते हैं, सियादी (*Bauhinia vahili*) की लताओं से रस्सी बनायी जा सकती है, सेमूर (सूती रेशम) की काँटेदार छाल पर सब्जियाँ छीली जा सकती हैं, महुए के पेड़ से खाना पकाने और रोशनी के लिए तेल निकाला जा सकता है।



चित्र 13 - सूखते हुए तेंदू-पत्ते.

जंगलों में रहने वाले बहुत सारे लोगों के लिए तेंदू के पत्तों की बिक्री आय का एक प्रमुख साधन है। प्रत्येक बंडल में लगभग 50 पत्ते होते हैं। एक व्यक्ति कठिन परिश्रम करके एक दिन में ज्यादा से ज्यादा 100 बंडल इकट्ठा कर सकता है। बच्चे, महिलाएँ और वृद्ध ही मुख्यतः पत्ते इकट्ठे करते हैं।



चित्र 14 - खलिहानों से अनाज लाते हुए.

खलिहानों से पुरुष टोकरियों में अनाज ला रहे हैं। पुरुष अपने कंधों के आर-पार एक छड़ी में बंधी टोकरियों को लाते हैं जबकि औरतें इन टोकरियों को अपने सिर पर रख कर लाती हैं।

वन अधिनियम के चलते देश भर में गाँव वालों की मुश्किलें बढ़ गईं। इस कानून के बाद घर के लिए लकड़ी काटना, पशुओं को चराना, कंद-मूल-फल इकट्ठा करना आदि रोज़मर्रा की गतिविधियाँ गैरकानूनी बन गईं। अब उनके पास जंगलों से लकड़ी चुराने के अलावा कोई चारा नहीं बचा और पकड़े जाने की स्थिति में वे वन-रक्षकों की दया पर होते जो उनसे घूस ऐंठते थे। जलावनी लकड़ी एकत्र करने वाली औरतें विशेष तौर से परेशान रहने लगीं। मुफ्त खाने-पीने की मांग करके लोगों को तंग करना पुलिस और जंगल के चौकीदारों के लिए सामान्य बात थी।

क्रियाकलाप

वन-प्रदेशों में रहने वाले बच्चे पेड़-पौधों की सैकड़ों प्रजातियों के नाम बता सकते हैं। आप पेड़-पौधों की कितनी प्रजातियों के नाम जानते हैं?

2.2 वनों के नियमन से खेती कैसे प्रभावित हुई?

यूरोपीय उपनिवेशवाद का सबसे गहरा प्रभाव झूम या घुमंतू खेती की प्रथा पर दिखायी पड़ता है। एशिया, अफ्रीका व दक्षिण अमेरिका के अनेक भागों में यह खेती का एक परंपरागत तरीका है। इसके कई स्थानीय नाम हैं जैसे - दक्षिण-पूर्व एशिया में *लादिंग*, मध्य अमेरिका में *मिलपा*, अफ्रीका में *चितमेन* या *तावी* व श्रीलंका में *चेना*। हिंदुस्तान में घुमंतू खेती के लिए *धया*, *पेंदा*, *बेवर*, *नेवड़*, *झूम*, *पोडू*, *खंदा* और *कुमरी* ऐसे ही कुछ स्थानीय नाम हैं।

घुमंतू कृषि के लिए जंगल के कुछ भागों को बारी-बारी से काटा और जलाया जाता है। मॉनसून की पहली बारिश के बाद इस राख में बीज बो दिए जाते हैं और अक्टूबर-नवंबर में फ़सल काटी जाती है। इन खेतों पर दो-एक साल खेती करने के बाद इन्हें 12 से 18 साल तक के लिए परती छोड़ दिया जाता है जिससे वहाँ फिर से जंगल पनप जाए। इन भूखंडों में मिश्रित फ़सलें उगायी जाती हैं जैसे मध्य भारत और अफ्रीका में ज्वार-बाजरा, ब्राजील में कसावा और लैटिन अमेरिका के अन्य भागों में मक्का व फलियाँ।

यूरोपीय वन रक्षकों की नज़र में यह तरीका जंगलों के लिए नुकसानदेह था। उन्होंने महसूस किया कि जहाँ कुछेक सालों के अंतर पर खेती की जा रही हो ऐसी ज़मीन पर रेलवे के लिए इमारती लकड़ी वाले पेड़ नहीं उगाए



चित्र 15 - टोंग्या खेती एक ऐसी व्यवस्था थी जहाँ किसानों को कुछ समय के लिए बागानों में ही खेती करने की आज़ादी थी। 1921 में बर्मा के थर्वावाड़ी डिवीजन से लिए गए इस चित्र में किसान धान बो रहे हैं। लोहे के छोर वाले लंबे बाँसों की सहायता से पुरुष धरती में छेद बनाते थे। औरतें प्रत्येक छेद में धान बोती थीं।



चित्र 16 - जंगल के पेदा या पोदू हिस्सों को जलाना.

घुमंतू खेती में जंगलों को साफ़ किया जाता है। सामान्यतः चट्टानों की ढलानों पर पेड़ों को काटने के बाद राख के लिए इन्हें जला दिया जाता है। इसके बाद इस क्षेत्र में फिर बीज बिखेर दिए जाते हैं और वर्षा से सिंचाई के लिए इन्हें छोड़ दिया जाता है।

जा सकते। साथ ही, जंगल जलाते समय बाकी बेशकीमती पेड़ों के भी फैलती लपटों की चपेट में आ जाने का खतरा बना रहता है। घुमंतू खेती के कारण सरकार के लिए लगान का हिसाब रखना भी मुश्किल था। इसलिए सरकार ने घुमंतू खेती पर रोक लगाने का फैसला किया। इसके परिणामस्वरूप अनेक समुदायों को जंगलों में उनके घरों से जबरन विस्थापित कर दिया गया। कुछ को अपना पेशा बदलना पड़ा तो कुछ ने छोटे-बड़े विद्रोहों के जरिए प्रतिरोध किया।

2.3 शिकार की आज्ञादी किसे थी?

जंगल संबंधी नए कानूनों ने वनवासियों के जीवन को एक और तरह से प्रभावित किया। वन कानूनों के पहले जंगलों में या उनके आसपास रहने वाले बहुत सारे लोग हिरन, तीतर जैसे छोटे-मोटे शिकार करके जीवनयापन करते थे। यह पारंपरिक प्रथा अब गैर-कानूनी हो गयी। शिकार करते हुए पकड़े जाने वालों को अवैध शिकार के लिए दंडित किया जाने लगा।

जहाँ एक तरफ़ वन कानूनों ने लोगों को शिकार के परंपरागत अधिकार से वंचित किया, वहीं बड़े जानवरों का आखेट एक खेल बन गया। हिंदुस्तान में बाघों और दूसरे जानवरों का शिकार करना सदियों से दरबारी और नवाबी संस्कृति का हिस्सा रहा था। अनेक मुगल कलाकृतियों में शहजादों और सम्राटों को शिकार का मज़ा लेते हुए दिखाया गया है। किंतु औपनिवेशिक शासन के दौरान शिकार का चलन इस पैमाने तक बढ़ा कि कई प्रजातियाँ



चित्र 17 - मछली मारने वाला लड़का.

बच्चे अपने माँ-बाप के साथ जंगल जाते हैं और बहुत जल्द ही वे मछली पकड़ना, वन-उत्पादों को इकट्ठा करना व खेती करना सीख लेते हैं। बाँस के ट्रैप को, जिसे यह लड़का अपने बाएँ हाथ में पकड़े है, बहाव के मुहाने पर रखने पर मछली इसमें चली आती है।



चित्र 18 - नेपाल में शिकार के बाद लॉर्ड रीडिंग.

फ़ोटो में मृत बाघों की गिनती करें। ब्रिटिश औपनिवेशिक अफ़सर और राजा जब शिकार के लिए जाते तब उनके साथ नौकरों की एक पूरी फ़ौज होती थी। गाँव के कुशल शिकारी हाँका लगाते थे और साहब को बस गोली भर चलाना होता था।

लगभग पूरी तरह लुप्त हो गई। अंग्रेज़ों की नज़र में बड़े जानवर जंगली, बर्बर और आदि समाज के प्रतीक-चिह्न थे। उनका मानना था कि खतरनाक जानवरों को मार कर वे हिन्दुस्तान को सभ्य बनाएँगे। बाघ, भेड़िये और दूसरे बड़े जानवरों के शिकार पर यह कह कर इनाम दिए गए कि इनसे किसानों को खतरा है। 1875 से 1925 के बीच इनाम के लालच में 80,000 से ज़्यादा बाघ, 1,50,000 तेंदुए और 2,00,000 भेड़िये मार गिराए गए। धीरे-धीरे बाघ के शिकार को एक खेल की ट्रॉफी के रूप में देखा जाने लगा। अकेले जॉर्ज यूल नामक अंग्रेज़ अफ़सर ने 400 बाघों को मारा था। प्रारंभ में जंगल के कुछ इलाके शिकार के लिए ही आरक्षित थे। काफ़ी समय बाद पर्यावरणविदों और संरक्षणवादियों ने आवाज़ उठाई कि जानवरों की इन सारी प्रजातियों की सुरक्षा होनी चाहिए न कि इनको मारा जाना चाहिए।

2.4 नए व्यापार, नए रोज़गार और नई सेवाएँ

जंगलों पर वन विभाग का नियंत्रण स्थापित हो जाने से लोगों को कई तरह के नुकसान हुए, लेकिन कुछ लोगों को व्यापार के नए अवसरों का लाभ भी मिला। कई समुदाय अपने परंपरागत पेशे छोड़ कर वन-उत्पादों का व्यापार करने लगे। महज़ हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि दुनिया भर में कुछ ऐसा

स्रोत ग

बैगा मध्य भारत का एक वन समुदाय है। 1892 में जब उनकी घुमंतू खेती पर रोक लगा दी गयी तब उन्होंने सरकार को यह याचिका दी:

‘हर रोज़ हम फ़ाका करते हैं, क्योंकि हमारे पास खाने का अनाज नहीं है। हमारे पास सिर्फ़ एक ही दौलत है और वह है हमारी कुल्हाड़ी। हमारे पास अपने तन ढकने को कपड़े नहीं हैं। आग ताप कर हम ठंडी रातें गुज़ारते हैं। हम अब खाने के लिए मर रहे हैं। हम कहीं जा भी नहीं सकते हैं। हमने ऐसी क्या गलती की है कि सरकार हमारी परवाह नहीं करती? कैदियों को जेलों में पर्याप्त भोजन दिया जाता है। घास उगाने वालों को भी उनकी ज़मीन से बेदखल नहीं किया जाता है, लेकिन हम जो यहाँ कई पीढ़ियों से रहते आए हैं, हमें सरकार हमारा अधिकार नहीं देती।’

वेरियर एल्विन (1939); माधव गाडगिल व रामचन्द्र गुहा, ‘दिस फ़िशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया’ में उद्धृत।

ही नजारा दिखता है। उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं सदी के मध्य में ऊँची जगहों पर रह कर मैनिओक उगाने वाले ब्राजीली ऐमेज़ॉन के मुनदुरुकु समुदाय के लोगों ने व्यापारियों को रबड़ की आपूर्ति के लिए जंगली रबड़ के वृक्षों से 'लेटेक्स' एकत्र करना प्रारंभ कर दिया। कालांतर में वे व्यापार चौकियों की ओर नीचे उतर आए और पूरी तरह व्यापारियों पर निर्भर हो गए।

हिंदुस्तान में वन-उत्पादों का व्यापार कोई अनोखी बात नहीं थी। मध्यकाल से ही आदिवासी समुदायों द्वारा बंजारा आदि घुमंतू समुदायों के माध्यम से हाथियों और दूसरे सामान जैसे खाल, सींग, रेशम के कोये, हाथी-दाँत, बाँस, मसाले, रेशे, घास, गोंद और राल के व्यापार के सबूत मिलते हैं।

लेकिन अंग्रेज़ों के आने के बाद व्यापार पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में चला गया। ब्रिटिश सरकार ने कई बड़ी यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों को विशेष इलाकों में वन-उत्पादों के व्यापार की **इजारेदारी** सौंप दी। स्थानीय लोगों द्वारा शिकार करने और पशुओं को चराने पर बंदिशें लगा दी गईं। इस प्रक्रिया में मद्रास प्रेसीडेंसी के कोरावा, कराचा व येरुकुला जैसे अनेक चरवाहे और घुमंतू समुदाय अपनी जीविका से हाथ धो बैठे। इनमें से कुछ को 'अपराधी कबीले' कहा जाने लगा और ये सरकार की निगरानी में फ़ैक्ट्रियों, खदानों व बागानों में काम करने को मजबूर हो गए।

काम के नए अवसरों का मतलब यह नहीं था कि उनकी जीवन स्थिति में हमेशा सुधार ही हुआ हो। असम के चाय बागानों में काम करने के लिए झारखंड के संथाल और उराँव व छत्तीसगढ़ के गोंड जैसे आदिवासी मर्द व औरतों, दोनों की भर्ती की गयी। उनकी मज़दूरी बहुत कम थी और कार्यपरिस्थितियाँ उतनी ही खराब। उन्हें उनके गाँवों से उठा कर भर्ती तो कर लिया गया था लेकिन उनकी वापसी आसान नहीं थी।

स्रोत घ

पुतुमायो में रबड़ की निकासी

दुनिया भर में, बागानों में काम की स्थितियाँ भयावह थीं। ऐमेज़ॉन के पुटुमायो क्षेत्र में 'पेरूवियन रबड़ कंपनी' (ब्रिटिश व पेरूवियन साझे में) द्वारा रबड़ की निकासी हुईतोतोस कहे जाने वाले स्थानीय इंडियनों की बेगार पर निर्भर थी। 1900-1912 के बीच पुटुमायो में 4,000 टन रबड़ का उत्पादन हुआ और इसी दौरान इंडियन आबादी में यंत्रणा, रोगों और पलायन के चलते 30,000 की गिरावट आयी। रबड़ कंपनी के एक वेतनभोगी ने वर्णन किया है कि रबड़ का संग्रह कैसे किया जाता था। मैनेजर ने सैकड़ों इंडियनों को स्टेशन पर उपस्थित होने का निर्देश दिया:

उसने अपनी कार्बाइन और छुरा पकड़ा और इन बेबस इंडियनों का कत्लेआम शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर में बच्चों, महिलाओं और पुरुषों की 150 लाशों से ज़मीन ढक गयी। खून से नहाए हुए, दया की भीख माँगते ज़िंदा बचे लोगों को मुर्दों के ढेर के साथ जला दिया गया और मैनेजर चिल्लाया, "मैं उन सभी इंडियनों को खत्म कर देना चाहता हूँ जो रबड़ लाने के लिए दिए गए मेरे आदेश को नहीं मानते हैं।"

निकोलस डवर्स (सं.) *कॉलोनिअलिज़्म ऐन्ड कल्चर* (1992) में माइकेल ताउसिंग, 'कल्चर ऑफ़ टेरर-स्पेस ऑफ़ डैथ'।

स्रोत

नया शब्द

इजारेदारी: एकाधिकार।